तमिलनाडु में जैन धर्म और जैन संस्कार

□ **मुनि श्री सुमेरमल 'सुमन'**
युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के शिष्य

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी का आदेश पाकर हम सब बम्बई से दक्षिण भारत के तमिलनाडु प्रान्त में मद्रास चातुर्मास के लिए गये। लगभग एक वर्ष तक इस भूमि पर पर्यटन किया। अनेक ऐतिहासिक स्थलों का अवलोकन करने का मौका मिला। इससे बहुत कुछ जाना, देखा और समझा। मुझे लगा कि वहाँ पर जैन धर्म की जड़ें गहुत बहरी हैं, और वहाँ पर आज भी संस्कारों का प्रभाव है।

वैसे तमिलनाडु में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अति प्राचीन काल से चलता आ रहा है। यह एक आम मान्यता है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में जब बारह वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा. उस समय श्रुतकेवली भद्रबाहु ने बारह हजार मुनि संघ के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। इस यात्रा में राज-पाट को छोड़कर चन्द्रगुप्त मौर्य भी साथ ही गये थे। कर्नाटक प्रान्त के श्रवणबेलगोल पहुँचने पर भद्रबाहु को सहसा अभास हुआ कि अब उनका अन्तिम समय निकट है, यह अनुभव करके उन्होंने मुनि संघ को यहाँ से दक्षिण में विभिन्न स्थानों पर विचरण करते हुए धर्म-प्रभावना करने का आदेश दिया और वे स्वयं श्रवणबेलगोल में ही रुक गये। चन्द्रगुप्त भी इन्हीं के साथ रहा। भद्रबाहु ने यहीं पर समाधिपूर्वक नश्वर शरीर को त्यागा। भद्रबाहु के मुनिसंघ के साथ इस प्रयास के बाद दक्षिण में जैन धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। यद्यपि समय-समय पर अनेक संघर्ष झेलने पड़े किन्तु आज जो स्थिति है, उसका प्रारम्भ तब से ही माना जाता रहा है। यह अब अनुश्रुति नहीं रहकर ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध भी हो चुका है।

लेकिन एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि महान श्रुतकेवली भद्रबाहु ने भयंकर दुर्भिक्ष के समय में दक्षिण की ओर ही प्रस्थान क्यों किया? इसके लिए यह सहज उत्तर दिया जा सकता है कि भद्रबाहु के सामने उस समय जैन धर्म और मुनिसंघ दोनों की रक्षा का एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व था। यह वस्तुस्थिति भी है। लेकिन इसके साथ ही यह दूसरा प्रश्न उठता है कि धर्म और संघ की रक्षा का सवाल तत्कालीन मगध, पाटलीपुत्र आदि में भयंकर दुर्भिक्ष के कारण जितना कठिन था, उससे कम कठिन दक्षिण में प्रस्थान करने पर भी नहीं था, क्योंकि दक्षिण तो उनके लिये एकदम अपरिचित क्षेत्र था। आहार और मुनिचर्या के जो कठिन विधान हैं, उनका पालन करना दक्षिण में ज्यादा कठिन था, क्योंकि दक्षिण में मुनि संघ की मर्यादा आदि को समझने वाले नहीं थे, अन्य धर्म के अनुयायी थे। उस हालत में बारह हजार के इतने बड़े मुनिसंघ का निर्वाह अपरिचित हालतों में कैसे हुआ होगा, यह एक विचारणीय मुद्दा अवश्य है।

इस प्रश्न का उत्तर विद्वानों ने खोज निकाला है और उसे अब मान्यता भी मिल गई है कि भगवान महावीर ने स्वयं कलिंग प्रदेश में विहार करते हुए वहाँ पर जैन धर्म की काफी प्रभावना की और कालान्तर में कलिंग जैन धर्म का एक प्रमुख केन्द्र बन गया। इस बात के प्रमाण हाथीगुफा स्थित सम्राट खारवेल के शिलालेख से भी मिलते हैं। यह भी कहा जाता है कि कलिंग में जैन धर्म का प्रवेश शिशुनागवंशी राजा नन्दवर्धन के समय में हो गया था। ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि सम्राट खारवेल के समय में कलिंग में कई जैन मन्दिर विद्यमान थे। कलिंग की सीमा आन्ध्र प्रदेश से मिलती है। ऐसी हालत में भगवान महावीर के समय में ही कलिंग के रास्ते आन्ध्र में जैन धर्म का प्रवेश हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया था और आन्ध्र से इसका प्रवेश तमिलनाडु और क्रमश: दक्षिण के अन्य प्रदेशों में हो गया। भद्रबाहु स्वामी जब मुनि संघ के साथ दक्षिण में पधारे तो उस समय जैन धर्म का उपर्युक्त आधार अवश्य रहा होगा, तभी उन्होंने दुर्भिक्ष के संकट के समय में दक्षिण प्रस्थान का यह जोखिमभरा कदम उठाया। वस्तुस्थिति कुछ भी हो, लेकिन यह सही है कि तमिलनाडु में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार अति प्राचीनकाल से चलता आ रहा है।

तमिलनाडु में जैन धर्म के आज भी बहुत से अवशेष प्राप्त होते हैं। कांची के पास तिरूपरुत्तिकुन्नु में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर क्रमश: ऋषभदेव और वर्धमान के दो भव्य मन्दिर थे, इसी कारण इस स्थान का दूसरा नाम जिनकांची है। यहाँ से बहुत से शिलालेख भी मिले हैं। ये शिलालेख जैन धर्म और संस्कृति पर अच्छी खासी सामग्री उपलब्ध कराते हैं। यही नहीं, पोलूर नामक स्थान से लगभग दस मील दूर तिरूमलै नामक गाँव और इसी नाम की एक पहाड़ी है। यहाँ पर अभी भी जैन मतावलम्बियों का निवास है। इनमें से कुछ घरों में जैन धर्म के बहुत से ग्रन्थ भी बताए जाते हैं। दक्षिण आरकाट जिले का पाटलीपुर गाँव कभी जैन गुरुओं का केन्द्र था। सित्तन्नवासल में अनेक जैन गुफाएँ, मन्दिर व मूर्तियाँ मिलती हैं। सित्तन्नवासल का अर्थ है—सिद्धों या जैन साधुओं का वास स्थान। तमिल में 'सित्त' का अर्थ है सिद्ध और 'वासल' का अर्थ है, निवास स्थान। इस क्षेत्र में 'सित्तवणकम्' आज भी प्रचलित है। इस सित्तवणकम् का अर्थ होता है—'सिद्धों को नमस्कार'। नारट्टामलै नाम की पहाड़ी पर भी जैन धर्म व संस्कृति के अवशेष पाये जाते हैं। आलरूट्टीमलै नाम की पहाड़ी पर भी सित्तन्नवासल की तरह प्राकृतिक गुफाएँ हैं जो जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। मदुरा, अज्जनन्दि आदि स्थानों पर तो जैन धर्म के अवशेष बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। 'अरगमकुप्पम्' गाँव अरिहंतों के गाँव के रूप में आज भी प्रसिद्ध है। कडलू में जो विशाल खण्डहर व अन्य अवशेष प्राप्त होते हैं, उनके लिये ऐसा कहा जाता है कि वहाँ पर कभी एक बहुत बड़ा जैन विश्वविद्यालय था। यह सब इसलिये संभव हो सका कि यहाँ पर अनेक दिग्गज जैनाचार्य जैन शासन की प्रभावना के लिए आए। कुछेक जैनाचार्य यहीं जन्में, जैन धर्म का प्रचार-प्रसार किया और इसी भूमि पर समाधिमरण से मृत्यु का वरण किया। उनमें अकलंक, गुणभद्र आदि मुख्य रहे हैं। कुछ आचार्यों का आगमन तो इस भूमि के लिए ऐतिहासिक माना जाता है। उनके आने से जैन धर्म का प्रभाव जन-मानस पर ही नहीं, राजाओं पर भी पड़ा। क्रमश: जैन धर्म राज-धर्म बन गया। सर्वत्र जैनों का प्रभुत्व और प्रभाव बढ़ने लगा। विशाल जैन मन्दिरों की भी जगह-जगह स्थापना होने लगी। सर्वत्र जैन धर्म को सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा।

जैन धर्म यहाँ के जन-मानस में जब पूर्णरूपेण आत्मसात् हो गया तब जैनाचार्यों, संतों और विद्वानों की लेखनी तमिल भाषा में चली। जैन दर्शन और साहित्य पर अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये। तमिल भाषा को इससे सुसम्पन्न होने का अवसर मिला। कन्नड भाषा भी इससे लाभान्वित हुई। 'नालडीयार' और 'इलंगो अडिगल' जैसे श्रमण संतों का योग विशेष उल्लेखनीय रहा। यह निर्विवाद सत्य है। यहाँ का विद्वत् समाज भी बहुत गौरव के साथ इस बात को स्वीकार करता है और यह भी मानता है कि यदि इस भाषा से प्राचीन जैन साहित्य निकाल दिया जाय तो इस भाषा में रिक्तता आ जायेगी।

तिरूक्कुरल नाम का सुप्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ यहाँ बहुत सम्मान और आदर के साथ पढ़ा जाता है। इस ग्रन्थ का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। ग्रन्थ के रचयिता तिरूवल्लुवर माने जाते हैं। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि यह ग्रन्थ कुन्दकुन्दाचार्य ने लिखा था। ऐसा भी माना जाता है कि तिरूवल्लुवर कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य थे। किंवदन्ती के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि इस ग्रन्थ के वाचन का प्रोग्राम राजसभा में रखा गया था। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं उपस्थित नहीं हुए। उन्होंने तिरूवल्लुवर को भेजा। उसका वाचन तिरूवल्लुवर ने किया था। अत: उनके नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह सत्य है कि यह जैन ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में आदि-भगवान को नमस्कार किया है।

धर्म अमृत है, पर अमृत के नाम से जहर कितना उगला गया। धर्म व्यापक है पर व्यापकता के नाम पर संकीर्णता कितनी बरती गयी। धर्म अहिंसा है पर अहिंसा के नाम पर हिंसा कितनी हुई, इसका एक ज्वलन्त उदाहरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है—दक्षिण में जैनों के प्रति तथाकथित धार्मिकों के द्वारा अत्यन्त करुणाजनक और हिंसाजनक किया गया अत्याचार। हम कल्पना नहीं कर सकते कि एक धार्मिक दूसरे धार्मिक के प्रति इतना हिंसक बन सकता है। धर्म के नाम पर क्या नहीं किया जा सकता? यहाँ की घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है। मन नहीं चाहता है कि ऐसी घटनाओं का विस्तार से उल्लेख किया जाय। किसी घटना को लेकर सैकड़ों जैन संतों को, लाखों जैनी भाइयों को मौत के घाट उतारा गया। कोल्हू में पीला गया। कड़ाहों में तला गया। हिंसा चरम सीमा पर पहुँची। उस हिंसा के तूफान में अनेकों मरे। अनेकों शैव-धर्मी बने और अनेकों ने छद्मवेष धारण किया और अनेक भव्य जैन मन्दिर शिव मन्दिर में परिणत हो गए।

आज दक्षिण के जैनों की संख्या बहुत कम और सामान्य स्थिति में है। प्रायः खेतीकर लोग है। आज वे नाईनार से पुकारे जाते हैं। जैन धर्म के संस्कारों में आज भी वे सुदृढ़ हैं। अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए वे लोग अपनी संतानों के नाम तीर्थंकर और प्राचीन आचार्यों के नाम पर रखते हैं। रात्रिभोजन वे लोग नहीं करते। सुनने को यहाँ तक मिलता है कि माताएँ अपने बच्चे को रात्रि में स्तनपान भी नहीं करातीं।

तमिलनाडु में जैन संस्कृति का प्रभाव आज भी जनमानस पर छाया हुआ है। इसका पता बहुत आसानी से लग सकता है। यहाँ के पहनाव को देखने से ऐसा लगता है कि यहाँ जैन संतों की सचेलक और अचेलक दोनों प्रकार की साधना चलती थी। यहाँ के स्थानीय लोग विवाह दिन में करते हैं। रात्रि में विवाह करने वाले मारवाड़ियों को कहते हैं कि यह चोर विवाह है। यह जैनों के लिए चिन्तन का विषय है। जैनों की पहचान के यहाँ दो प्रमुख कारण मानते हैं—रात्रि-भोजन न करना और अनछाना पानी न पीना।

दक्षिण की यात्रा के प्रसंग में आचार्य श्री से राजगोपालाचार्य ने कहा था—'यहाँ के जनमानस में जैन धर्म के संस्कार हैं। यहाँ लोग फूल को नहीं बींधते। यह जैनों की अहिंसा का ही प्रभाव है। मैं निरामिष-भोजी हूँ। यह जैन धर्म की ही देन है; नहीं तो मांसाहारी होता'।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org